अध्याय 2

समाजशास्त्र में प्रयुक्त शब्दावली, संकल्पनाएँ एवं उनका उपयोग

1

परिचय

पिछला अध्याय हमें समाज और समाजशास्त्र दोनों से परिचित कराता है। हमने देखा कि समाजशास्त्र का मुख्य कार्य समाज और व्यक्ति की परस्पर क्रियाओं की खोज करना है। हमने यह भी देखा कि व्यक्ति समाज में स्वच्छंद रूप से नहीं रहते। वे सामूहिक निकायों जैसे परिवार, जनजाति, जाति, वर्ग, कुल, राष्ट्र का हिस्सा होते हैं। इस अध्याय में आगे हम व्यक्तियों द्वारा बनाए गए समूहों के विभिन्न प्रकारों, असमान व्यवस्था के विभिन्न प्रकारों, स्तरीकरण की व्यवस्थाओं जिनमें व्यक्ति और समूह शामिल हैं, सामाजिक नियंत्रण के कार्य करने के तरीकों, व्यक्तियों की भूमिकाओं व जिस तरह वे उन्हें निभाते हैं एवं उनकी प्रस्थिति के बारे में पढ़ेंगे।

दूसरों शब्दों में, हम यह जानना शुरू करते हैं कि किस प्रकार समाज अपने आप कार्य करता है। क्या यह सामंजस्यपूर्ण है अथवा विरोधग्रस्त है? क्या प्रस्थिति और भूमिकाएँ निश्चित हैं? सामाजिक नियंत्रण किस प्रकार कार्य करता है? किस प्रकार की असमानताएँ मौजूद हैं? अभी भी यह प्रश्न रह जाता है कि इसे समझने के लिए हमें विशिष्ट शब्दावली और संकल्पनाओं की आवश्यकता क्यों होती है। समाजशास्त्र के लिए विशिष्ट शब्दावली की आवश्यकता क्यों पड़ती है जबकि हम अपने दैनिक जीवन में प्रस्थिति एवं भूमिका या सामाजिक नियंत्रण जैसे शब्दों का प्रयोग करते हैं?

किसी विषय के लिए, जैसे नाभिकीय भौतिकी, जो उन पदार्थों से संबंध रखता है जिन्हें सामान्यतः लोग नहीं जानते तथा जिनके लिए सामान्य भाषा में कोई शब्द नहीं है, यह आवश्यक है कि विषय की अपनी एक शब्दावली हो। तथापि, समाजशास्त्र के लिए शब्दावली और भी महत्त्वपूर्ण है, सिर्फ़ इसलिए कि इसकी विषय-वस्तु परिचित है और सिर्फ़ इसलिए कि इसे दर्शाने के लिए शब्द मौजूद हैं। हम अपने आस-पास की सामाजिक संस्थाओं से इतने अच्छी तरह परिचित हैं कि हम उन्हें स्पष्ट और बारीकी से नहीं देख सकते (बर्जर 1976 : 25)।

उदाहरण के लिए, हम यह सोच सकते हैं कि चूँकि हम परिवारों में रहते हैं, इसीलिए हम परिवारों के बारे में सब कुछ जानते हैं। इसका मतलब समाजशास्त्रीय ज्ञान को सामान्य बौद्धिक ज्ञान या प्रकृतिवादी व्याख्या, जिनकी चर्चा हमने अध्याय 1 में की है, के समानांतर रखने जैसा होगा।

पिछले अध्याय में हमने यह भी देखा कि किस प्रकार एक विषय के रूप में, समाजशास्त्र की एक जीवनी या इतिहास है। हमने देखा कि किस प्रकार भौतिक और बौद्धिक विकास ने समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण और इसके सरोकारों को आकार दिया। इसी तरह, समाजशास्त्रीय संकल्पनाओं की भी एक कहानी है। बहुत सी संकल्पनाएँ सामाजिक चिंतकों के उन सामाजिक परिवर्तनों को समझने और उनका खाका खींचने की चिंता को दर्शाती हैं जो कि पूर्व आधुनिक समय से लेकर आधुनिक समय तक स्थानांतरित हुए हैं। उदाहरण के लिए, समाजशास्त्रियों का प्रेक्षण है कि सरल, छोटे और परंपरागत समाजों में घनिष्ठ, अकसर आमने-सामने की अंत:क्रिया होती थी और आधुनिक, बड़े समाजों में औपचारिक अंत:क्रिया होती है। इसलिए उन्होंने प्रारंभिक समूहों को द्वितीयक से और समुदाय को समाज या संघ से पृथक किया। दूसरी अन्य संकल्पनाएँ, जैसे स्तरीकरण, समाजशास्त्रियों की समाज के समूहों के मध्य की संरचनात्मक असमानताओं को समझने के सरोकारों को प्रतिबिंबित करती है।

संकल्पनाएँ समाज में उत्पन्न होती हैं। तथापि, जिस प्रकार समाज में विभिन्न प्रकार के व्यक्ति और समूह होते हैं, उसी प्रकार कई तरह की संकल्पनाएँ और विचार होते हैं। समाजशास्त्र स्वयं समाज को समझने के विभिन्न तरीकों एवं आधुनिक समय द्वारा लाए गए नाटकीय सामाजिक परिवर्तनों पर दृष्टि रखने के लिए पहचाना जाता है।

हमने देखा है कि किस प्रकार समाजशास्त्र के उद्गम के आरंभिक चरणों में भी समाज के बारे में प्रतिद्वंद्वी और विरोधी समझ थी। यदि कार्ल मार्क्स के लिए वर्ग और संघर्ष समाज को समझने की मुख्य संकल्पनाएँ थीं, तो एमिल दुर्खाइम के लिए सामाजिक एकता और सामूहिक चेतना मुख्य शब्द थे। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद समाजशास्त्र संरचनात्मक प्रकार्यवादियों से बहुत प्रभावित हुआ जिन्होंने समाज को महत्त्वपूर्ण रूप से सामंजस्यपूर्ण पाया। उन्होंने समाज की तुलना एक जीव से करना लाभदायक समझा जिसमें सभी अंगों को, समग्र को बनाए रखने के लिए एक निश्चित कार्य करना होता है। दूसरे, विशेषकर मार्क्सवाद से प्रभावित संघर्षवादी सिद्धांतकारों ने समाज को विशेष रूप से विरोधग्रस्त पाया।

समाजशास्त्र में कुछ लोगों ने व्यक्तियों जैसे सूक्ष्म अंत:क्रिया से शुरुआत कर मानवीय व्यवहार को समझने की कोशिश की। दूसरों ने बृहत संरचनाओं जैसे वर्ग, जाति, बाज़ार, राज्य अथवा समुदाय से भी शुरुआत की। प्रस्थिति और भूमिका जैसी संकल्पनाएँ व्यक्ति के साथ आरंभ होती हैं। सामाजिक नियंत्रण या स्तरीकरण जैसी संकल्पनाएँ विस्तृत संदर्भ में आरंभ होती हैं जिनमें व्यक्तियों का स्थान पहले से ही तय होता है।

महत्त्वपूर्ण मुद्दा यह है कि ये वर्गीकरण और प्रकार जिनकी चर्चा हम समाजशास्त्र में करते हैं, हमारी मदद करते हैं और ये वास्तविकता को समझने के साधन हैं। ये समाज को समझने के ताले की चाबियाँ हैं। हमारी समझने की प्रक्रिया में ये प्रारंभिक बिंदु हैं, अंतिम उत्तर नहीं। पर क्या हो, यदि इन चाबियों पर ज़ंग लग जाए या ये मुड़ जाएँ या ये ताले में न जा पाएँ या प्रयास करने के बाद ताले में जा पाएँ? इन परिस्थितियों में हमें चाबी को बदलने की या सुधारने की आवश्यकता पड़ती है। समाजशास्त्र में, हम संकल्पनाओं और वर्गीकरण का प्रयोग करते हैं और साथ-साथ इनको निरंतर जाँचते भी हैं।

क्रियाकलाप-1

किसी एक विषय को कक्षा में चर्चा के लिए चुनें–

- विकास के लिए लोकतंत्र एक सहायता अथवा एक रुकावट है।
- लिंग समानता अधिक सामंजस्यपूर्ण अथवा अधिक विभाजक समाज बनाती है।
- विरोधों को दूर करने के लिए दंड अथवा चर्चा सर्वश्रेष्ठ तरीका है।

दूसरे विषयों के बारे में सोचें।

किस प्रकार के अंतर उभरते हैं?

क्या ये एक अच्छा समाज कैसा होना चाहिए, के बारे में विभिन्न दृष्टियों को प्रतिबिंबित करते हैं?

क्या ये अंतर मनुष्यों की विभिन्न धारणाओं को दर्शाते हैं?

एक ही सामाजिक वस्तु के बारे में विभिन्न प्रकारों की परिभाषाओं या संकल्पनाओं अथवा सिर्फ़ विचारों की सह-अस्तित्वता के बारे में अकसर एक बैचेनी रही है। उदाहरण के लिए, संघर्षवादी सिद्धांत बनाम प्रकार्यवादी सिद्धांत। उपागमों की यह बहुलता समाजशास्त्र में विशेषतया बहुत ज़्यादा है और इसे नकारा नहीं जा सकता क्योंकि समाज स्वयं बहुत विविध रूपों में है।

हमारे द्वारा आगे की गई चर्चा में, आप देखेंगे कि किस प्रकार मतों में विभिन्नता होती है और किस प्रकार इन अंतरों पर वाद-विवाद और चर्चा, समाज को समझने में हमारी सहायता करते हैं।

2

सामाजिक समूह एवं समाज

समाजशास्त्र मानव के सामाजिक जीवन का अध्ययन है। मानवीय जीवन की एक पारिभाषिक विशेषता यह है कि मनुष्य परस्पर अंत:क्रिया करता है, संवाद करता है और सामाजिक सामूहिकता को बनाता भी है। समाजशास्त्र का तुलनात्मक और ऐतिहासिक दृष्टिकोण दो स्पष्ट अहानिकारक तथ्यों को सामने लाता है। पहला यह है कि प्रत्येक समाज में चाहे वह प्राचीन या सामंतीय अथवा आधुनिक हो, एशियन या यूरोपियन या अफ्रीकन हो, मानवीय समूह और सामूहिकताएँ विद्यमान रहती है। दूसरा यह है कि विभिन्न समाजों में समूहों और सामूहिकताओं के प्रकार अलग-अलग होते हैं।

यह आवश्यक नहीं है कि किसी भी तरह से लोगों का इकट्ठा होना एक सामाजिक समूह बनाए। समुच्चय सिर्फ़ लोगों का जमावड़ा होता है जो एक समय में एक ही स्थान पर एकत्र होते हैं लेकिन एक दूसरे से कोई निश्चित संबंध नहीं रखते। एक रेलवे स्टेशन या हवाई अड्डे या बस स्टॉप पर प्रतीक्षा करते यात्री या सिनेमा दर्शक समुच्चय के उदाहरण हैं। समुच्चय को अकसर अर्ध समूहों का नाम दिया जाता है।

एक अर्ध समूह एक समुच्चय अथवा संयोजन होता है, जिसमें संरचना अथवा संगठन की कमी होती है, और जिसके सदस्य समूह के अस्तित्व के प्रति अनभिज्ञ या कम जागरूक होते हैं। सामाजिक वर्गों, प्रस्थिति समूहों, आयु एवं लिंग समूहों, भीड़ को अर्ध समूह के उदाहरणों के रूप में देखा जा सकता है। जैसा कि ये उदाहरण दर्शाते हैं, अर्ध समूह समय और विशेष परिस्थितियों में सामाजिक समूह बन सकते हैं। उदाहरणार्थ यह संभव है कि एक विशेष सामाजिक वर्ग या जाति अथवा समुदाय से संबंधित व्यक्ति एक सामूहिक निकाय के रूप में संगठित न हो। उनमें अभी 'हम' की भावना आनी बाकी हो। परंतु वर्ग और जाति ने समय बीतने के साथ-साथ राजनीतिक दलों को जन्म दिया है। उसी प्रकार भारत के विभिन्न समुदायों के लोगों ने लंबे उपनिवेश-विरोधी संघर्ष के साथ-साथ अपनी पहचान एक सामूहिकता और समूह के रूप में विकसित की है—एक राष्ट्र जिसका मिला-जुला अतीत और साझा भविष्य है। महिला आंदोलन ने महिलाओं के समूह और संगठनों का विचार सामने रखा। ये सभी उदाहरण इस बात की तरफ़ ध्यान खींचते हैं कि किस प्रकार सामाजिक समूह उभरते हैं, परिवर्तित होते हैं और संशोधित होते हैं।
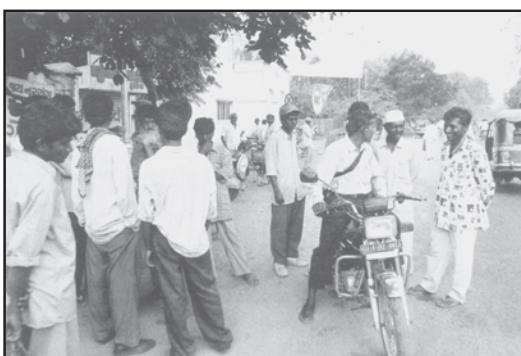
एक सामाजिक समूह में कम से कम निम्न विशेषताएँ होनी चाहिए—

(क) निरंतरता के लिए दीर्घ स्थायी अंत:क्रिया;

(ख) इन अंत:क्रियाओं का स्थिर प्रतिमान;

(ग) अन्य सदस्यों के साथ एक सी पहचान बनाने के लिए अपनत्व की भावना, अर्थात प्रत्येक व्यक्ति समूह के प्रति और इसके नियमों, अनुष्ठानों और प्रतीकों के प्रति सचेत हो;

ये किस प्रकार के समूह हैं?

(घ) साझी रुचि;
(ङ) सामान्य मानकों और मूल्यों को अपनाना;
(च) एक परिभाषित संरचना।

यहाँ सामाजिक संरचना का अर्थ, व्यक्तियों अथवा समूहों के बीच नियमित और बार-बार होने वाली अंत:क्रिया के प्रतिमानों से है। अत: एक सामाजिक समूह से तात्पर्य निरंतर अंत:क्रिया करने वाले उन व्यक्तियों से है, जो एक समाज में समान रुचि, संस्कृति, मूल्यों और मानकों को बाँटते हैं।

समूहों के प्रकार

समूहों पर आधारित इस विभाग के अध्ययन से आप जानेंगे कि विभिन्न समाजशास्त्रियों और मानवविज्ञानियों ने समूहों को विभिन्न प्रकारों में वर्गीकृत किया है। तथापि, जो बात आपको प्रभावित करेगी वह यह है कि प्ररूप विज्ञान में भी प्रतिमान होते हैं। अधिकतर मामलों में वे परंपरागत और छोटे समाज तथा एक आधुनिक और बड़े समाज में अपने-अपने

क्रियाकलाप-2

एक नाम ज्ञात कीजिए जो प्रत्येक शीर्षक के अंतर्गत उपयुक्त है।

जाति	एक जाति विरोधी आंदोलन	जाति पर आधारित एक राजनीतिक दल
वर्ग	एक वर्ग पर आधारित आंदोलन	वर्ग पर आधारित एक राजनीतिक दल
महिलाएँ	एक महिला आंदोलन	एक महिला संगठन
जनजाति	एक जनजाति आंदोलन	एक जनजाति / जनजातियों पर आधारित राजनीतिक दल
ग्रामीण	एक पर्यावरण संबंधी आंदोलन	एक पर्यावरण संबंधी संगठन

चर्चा करें कि क्या ये सभी शुरुआत से ही सामाजिक समूह थे और यदि कुछ नहीं थे, तो किस बिंदु पर समाजशास्त्रीय समझ के आधार से हम इनके लिए सामाजिक समूह शब्द का प्रयोग कर सकते हैं।

क्रियाकलाप-3

किशोर आयु समूह की चर्चा करें। क्या यह अर्द्ध समूह अथवा सामाजिक समूह है? क्या जीवन के विशेष चरण के रूप में 'किशोरावस्था' और 'किशोर' जैसे विचार हमेशा से ही मौजूद रहे हैं? परंपरागत समाजों में वयस्कता में बच्चों के प्रवेश को किस प्रकार चिह्नित किया जाता था? समकालीन समय में इस समूह / अर्द्ध समूह को मज़बूत अथवा कमज़ोर बनाने में बाज़ार की रणनीति और विज्ञापनों का क्या कुछ लेना-देना है? एक विज्ञापन को पहचानो जो किशोरों अथवा पूर्व किशोरों को लक्ष्य बनाता है। स्तरीकरण से संबंधित अनुच्छेद पढ़ो और चर्चा करो कि किस प्रकार धनी और निर्धन, उच्च और निम्न वर्ग, भेदभाव और सुविधा प्राप्त जाति के किशोरों के लिए किशोरावस्था विभिन्न तरह का जीवन-अनुभव हो सकती है।

समूह बनने के तरीकों में अंतर को दिखाते हैं। जैसाकि पहले बताया गया है, परंपरागत समाजों में नज़दीकी, घनिष्ठ, आमने-सामने की अंत:क्रिया होती है और आधुनिक समाजों में अवैयक्तिक, अनासक्त, दूरस्थ अंत:क्रिया होती है। वे इसी अंतर से प्रभावित हुए थे। तथापि पूर्णत: विरोधाभास शायद वास्तविकता का सटीक वर्णन नहीं है।

प्राथमिक और द्वितीयक सामाजिक समूह

वे सभी समूह जिनसे हम संबंधित होते हैं हमारे लिए समान रूप से महत्त्वपूर्ण नहीं होते हैं। कुछ समूह हमारे जीवन के कई पक्षों को प्रभावित करते हैं और हमें दूसरों के वैयक्तिक साहचर्य में लाते हैं। 'प्राथमिक समूह' से तात्पर्य लोगों के एक छोटे समूह से है जो घनिष्ठ, आमने-सामने के मेल-मिलाप और सहयोग द्वारा जुड़े होते हैं। प्राथमिक समूहों के सदस्यों में एक-दूसरे से संबंधित होने की भावना होती है। परिवार, ग्राम और मित्रों के समूह प्राथमिक समूहों के उदाहरण हैं।

द्वितीयक समूह आकार में अपेक्षाकृत बड़े होते हैं और उनमें औपचारिक और अवैयक्तिक संबंध होते हैं। प्राथमिक समूह व्यक्ति उन्मुख होते हैं, जबकि द्वितीयक समूह लक्ष्य उन्मुख। विद्यालय, सरकारी कार्यालय, अस्पताल, छात्र संघ आदि द्वितीयक समूहों के उदाहरण हैं।

समुदाय एवं समाज अथवा संघ

पुराने परंपरागत और कृषक जीवन की नए आधुनिक और शहरी जीवन से उनके विभिन्न सामाजिक संबंधों और जीवन-शैली के आधार पर तुलना करने का विचार शास्त्रीय समाजशास्त्रियों के लेखन की ओर ले जाता है।

'समुदाय' से तात्पर्य उन मानव संबंधों से है, जो बहुत अधिक वैयक्तिक, घनिष्ठ और चिरस्थायी होते हैं, जहाँ एक व्यक्ति की भागीदारी सच्चे मित्रों अथवा एक सुगठित समूह में भले ही परिवार जितनी नहीं परंतु महत्त्वपूर्ण होती है।
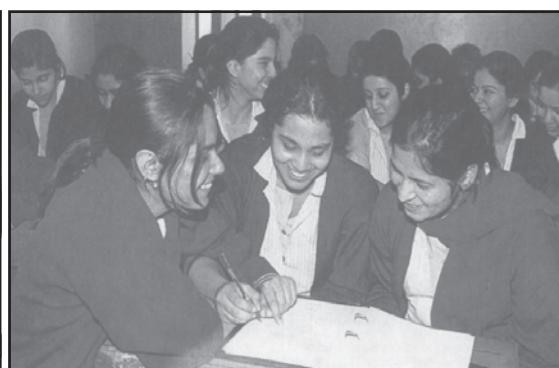
इन दो प्रकार के समूहों की तुलना कीजिए

क्रियाकलाप-4

किसी ऐसे संघ के ज्ञापन की प्रति एकत्रित करें जिसे आप जानते हैं या जिसके बारे में खोज कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, एक निवासी कल्याण संघ, एक महिला संघ, एक स्पोर्ट्स क्लब। आपको इसके लक्ष्यों, उद्देश्यों, सदस्यता और नियंत्रित करने वाले अन्य नियमों की स्पष्ट जानकारी मिल जाएगी। इसकी एक बड़ी पारिवारिक सभा से तुलना कीजिए।

आप यह भी देख सकते हैं कि कई बार, एक औपचारिक समूह के सदस्यों की अंत:क्रिया समय बीतने के साथ अधिक घनिष्ठ हो जाती है और 'बिलकुल परिवार और मित्रों' की तरह हो जाती है। उपरोक्त बात इस बिंदु को सामने लाती है कि संकल्पनाएँ अडिग और स्थिर नहीं हैं। बल्कि ये तो समाज और इसके परिवर्तनों को समझने की चाबियाँ अथवा साधन हैं।

'समाज' अथवा 'संघ' का तात्पर्य हर तरह से 'समुदाय' के विपरीत है, विशेषत: आधुनिक नगरीय जीवन के स्पष्टत: अवैयक्तिक, बाहरी और अस्थायी संबंध। वाणिज्य और उद्योग की आवश्यकता यह है कि एक व्यक्ति का व्यवहार दूसरे व्यक्ति से नपा-तुला, युक्तिसंगत एवं निजी हितों के अनुसार हो। हम एक-दूसरे को जानने की अपेक्षा करार अथवा समझौता करते हैं। आप समुदाय और प्राथमिक समूह को समान मान सकते हैं और संघ व द्वितीयक समूह को समतुल्य मान सकते हैं।

अंत:समूह एवं बाह्य समूह

संबंधित होने की भावना अंत:समूह की पहचान बनाती हैं। यह भावना 'हमें' या 'हम' को 'उन्हें' अथवा 'वे' से अलग करती हैं। एक स्कूल में पढ़ने वाले बच्चे, उस स्कूल में नहीं पढ़ने वाले बच्चों के विरुद्ध एक अंत:समूह बना सकते हैं। क्या आप ऐसे किन्हीं दूसरे समूहों के बारे में सोच सकते हैं?

इसके विपरीत, एक बाह्य समूह वह होता है जिससे एक अंत:समूह के सदस्य संबंधित नहीं होते। एक बाह्य समूह के सदस्यों को अंत:समूह के सदस्यों की ओर से प्रतिकूल व्यवहार का सामना करना पड़ सकता है। प्रवासियों को अकसर बाह्य समूह माना जाता है। हालाँकि, यहाँ भी कौन संबंधित है और कौन संबंधित नहीं की वास्तविक परिभाषा, समय और सामाजिक संदर्भों के साथ बदलती रहती है।

प्रख्यात समाजशास्त्री एम.एन. श्रीनिवास ने 1948 में रामपुरा में जनगणना करते समय

क्रियाकलाप-5

दूसरे देशों में या हमारे अपने देश के विभिन्न भागों में रहने वाले प्रवासियों के अनुभवों के बारे में पता लगाएँ।

आप यह जानेंगे कि समूहों में संबंध बदलते और रूपांतरित होते रहते हैं। एक बाह्य समूह के सदस्य माने जाने वाले लोग अंत:समूह के सदस्य बन जाते हैं। क्या आप इतिहास में इस प्रकार की प्रक्रियाओं के बारे में पता लगा सकते हैं?

देखा कि किस प्रकार नए और पुराने प्रवासियों के बीच भेदभाव किया गया था। वे लिखते हैं–

> मैंने ग्रामीणों को दो कथनों का प्रयोग करते सुना जो मुझे महत्त्वपूर्ण प्रतीत हुए–नए प्रवासियों का लगभग तिरस्कृत रूप से **नन्ने मुन्ने बंदावरतु** (कल या परसों आए हुए) कहकर वर्णन किया जाता था जबकि पुराने प्रवासियों का वर्णन **अरशेयिंदा बंदावारू** (बहुत पहले आए हुए) या **खादीम कुलागालू** (पुराने वंश) के रूप में किया गया था (श्रीनिवास 1996 : 33)।

संदर्भ समूह

किसी भी समूह के लोगों के लिए हमेशा ऐसे दूसरे समूह होते हैं जिनको वे अपने आदर्श की तरह देखते हैं और उनके जैसे बनना चाहते हैं। वे समूह जिनकी जीवन शैली का अनुकरण किया जाता है, संदर्भ समूह कहलाते हैं। हम अपने संदर्भ समूहों से संबंधित नहीं होते हैं, पर हम अपने आपको उस समूह से अभिनिर्धारित अवश्य करते हैं। संदर्भ समूह संस्कृति, जीवन शैली, महत्त्वाकांक्षाओं और लक्ष्य प्राप्ति के बारे में जानकारी के महत्त्वपूर्ण स्रोत होते हैं।

औपनिवेशिक समय में कई मध्यवर्गीय भारतीय बिलकुल अंग्रेज़ों की तरह व्यवहार करने का प्रयत्न करते थे। इस प्रकार इन्हें, महत्त्वाकांक्षा रखने वाले समूह के लिए संदर्भ समूह के रूप में देखा जा सकता था। परंतु यह प्रक्रिया लिंग–भेद पर आधारित थी, अर्थात पुरुषों और स्त्रियों के लिए अलग–अलग मापदंड थे। अकसर भारतीय पुरुष अंग्रेज़ पुरुषों की तरह पोशाक धारण करना चाहते थे और उन्हीं की तरह भोजन करना चाहते थे। परंतु वे यह चाहते थे कि भारतीय महिलाएँ अपना रहन–सहन 'भारतीय' ही रखें। या वे यह आकांक्षा रखते थे कि भारतीय महिलाएँ अंग्रेज़ महिलाओं का कुछ रहन–सहन ग्रहण करें पर बिलकुल उनकी तरह न बनें। क्या आप इसे आज भी वैध मानते हैं?

समवयस्क समूह

यह एक प्रकार का प्राथमिक समूह है, जो सामान्यतः समान आयु के व्यक्तियों के बीच अथवा सामान्य व्यवसाय समूह के लोगों के बीच बनता है। समवयस्क दबाव से तात्पर्य अपने समवयस्क साथी द्वारा डाले गए सामाजिक दबाव से है कि व्यक्ति को क्या करना चाहिए या क्या नहीं करना चाहिए।

क्रियाकलाप–6

क्या आपके मित्र या आपके आयु समूह के लोग आपको प्रभावित करते हैं? क्या आप अपने कपड़ों, व्यवहार, अपनी पसंद के संगीत, अपनी पसंद की फ़िल्मों के बारे में उनकी स्वीकृति अथवा अस्वीकृति से कोई सरोकार रखते हैं? क्या आप इसे सामाजिक दबाव मानते हैं? चर्चा कीजिए।

सामाजिक स्तरीकरण

सामाजिक स्तरीकरण से तात्पर्य भौतिक या प्रतीकात्मक लाभों तक पहुँच के आधार पर समाज में समूहों के बीच की संरचनात्मक असमानताओं के अस्तित्व से है। अंतः स्तरीकरण को सरलतम शब्दों में, लोगों के विभिन्न समूहों के बीच की संरचनात्मक असमानताओं के रूप

में परिभाषित किया जा सकता है। अकसर सामाजिक स्तरीकरण की तुलना धरती की सतह में चट्टानों की परतों से की जाती है। समाज को एक अधिक्रम जिसमें कई परतें शामिल हैं, के रूप में देखा जा सकता है इस अधिक्रम में अधिक कृपापात्र शीर्ष पर और कम सुविधापात्र तल के निकट हैं।

समाज के संगठन में स्तरीकरण का महत्त्वपूर्ण स्थान होने के कारण, शक्ति और लाभ की असमानता समाजशास्त्र में केंद्रीय है। प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक गृह के जीवन का प्रत्येक पक्ष स्तरीकरण से प्रभावित होता है। स्वास्थ्य, दीर्घायु, सुरक्षा, शैक्षणिक सफलता, कार्य में उपलब्धि और राजनीतिक प्रभाव यह सभी अवसर, व्यवस्थित तरीकों से असमान रूप में वितरित हैं।

मानव समाजों में ऐतिहासिक रूप में, स्तरीकरण की चार मूल व्यवस्थाएँ मौजूद रही हैं—दासता, जाति, इस्टेट और वर्ग। दास प्रथा असमानता का चरम रूप है जिसमें वास्तव में कुछ व्यक्तियों पर दूसरों का अधिकार होता है। यह छुट-पुट रूप में कई कालों और स्थानों पर मौजूद रही है, परंतु दास प्रथा के दो प्रमुख उदाहरण हैं; प्राचीन ग्रीस और रोम तथा 18वीं एवं 19वीं शताब्दियों में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के दक्षिणी राज्य। एक औपचारिक संस्था के रूप में, दास प्रथा को धीरे-धीरे जड़ से उखाड़ा गया। परंतु, हमारे यहाँ अभी भी बंधुआ मज़दूरी पाई जाती है, यहाँ तक कि उसमें बच्चे भी शामिल हैं। इस्टेट सामंतवादी यूरोप की विशेषता थी। हम यहाँ इस्टेट का विस्तृत वर्णन नहीं करेंगे परंतु सामाजिक स्तरीकरण की व्यवस्थाओं के रूप में जाति और वर्ग का बहुत ही संक्षिप्त रूप में उल्लेख करेंगे। सामाजिक स्तरीकरण के आधार के रूप में वर्ग, जाति, लिंग के बारे में हम अगली पुस्तक *समाज का बोध* (एन.सी.ई.आर.टी., 2019) में पढ़ेंगे।

जाति

जाति पर आधारित स्तरीकरण व्यवस्था में व्यक्ति की स्थिति पूरी तरह से जन्म द्वारा मिली हुई प्रस्थिति पर आधारित होती है न कि उन पदों पर जो व्यक्ति ने अपने जीवन में प्राप्त किए होते हैं। कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि एक वर्ग समाज में उपलब्धि पर कोई योजनाबद्ध प्रतिबंध नहीं होता जो कि प्रजाति और लिंग सरीखी प्रदत्त प्रस्थिति द्वारा थोपा जाता है। हालाँकि एक जातिवादी समाज में जन्म द्वारा प्रदत्त प्रस्थिति एक व्यक्ति की स्थिति को, एक वर्ग समाज की तुलना में ज़्यादा पूर्ण ढंग से परिभाषित करती है।

परंपरागत भारत में, विभिन्न जातियाँ सामाजिक श्रेष्ठता का अधिक्रम बनाती थी। जाति संरचना में प्रत्येक स्थान दूसरों के संबंध में इसकी शुद्धता या अपवित्रता के द्वारा परिभाषित था। इसके पीछे यह विश्वास था कि पुरोहित जाति ब्राह्मण जोकि सबसे अधिक पवित्र हैं, बाकी सबसे श्रेष्ठ हैं और पंचम, जिनको कई बार 'बाह्य जाति' कहा गया, सबसे निम्न हैं। परंपरागत व्यवस्था को सामान्यतः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के चार वर्णों के रूप में संकल्पित किया गया है। वास्तविकता में, व्यवसाय- आधारित अनगिनत जाति समूह होते हैं जिन्हें जाति कहा जाता है।

भारत में जाति व्यवस्था में समय के साथ–साथ बहुत से परिवर्तन आए हैं। कथित उच्च जातियों की पवित्रता को बनाए रखने के लिए अंत:विवाह और अनुष्ठानों में कथित निम्न जाति के सदस्यों की अनुपस्थिति बहुत आवश्यक मानी जाती थी। नगरीकरण द्वारा लाए गए परिवर्तनों ने इसे अनिवार्य रूप से चुनौती दी। प्रसिद्ध समाजशास्त्री ए.आर. देसाई के निम्न प्रेक्षण को पढ़ें।

भारत में नगरीकरण के दूसरे सामाजिक प्रभावों पर उनकी टिप्पणी इस प्रकार है–

> आधुनिक उद्योग आधुनिक शहरों को अस्तित्व में लाए जो सर्वदेशीय होटलों, रेस्तरांओं, रंगमंचों, ट्रामों, बसों, रेलों से मधुमक्खी के छत्ते की तरह भरे पड़े थे। विशुद्ध होटल और रेस्तरां जिन्हें वेतन भोगियों और मध्यम वर्ग के लिए बनाया गया था, शहरों में सभी जातियों और मतों के लोगों से भर गए... ट्रेनों और बसों में, व्यक्ति अकसर निम्न वर्ग के व्यक्ति के साथ सफर करते हैं... तथापि, यह नहीं माना जाना चाहिए कि जाति लुप्त हो गई हैं (देसाई 1975 : 248)।

हालाँकि परिवर्तन हुआ था, परंतु भेदभाव को दूर करना इतना आसान नहीं था, जैसाकि उपरोक्त कथन कहता है।

मिल में, उस प्रकार का खुला भेदभाव न हो जैसाकि गाँवों में होता है, परंतु निजी अंत:क्रिया के अनुभव दूसरी कहानी बताते हैं। परमार ने देखा...

> वे हमारे हाथों से पानी भी नहीं पीते और हमसे व्यवहार करते समय कई बार गाली–गलौजवाली भाषा का प्रयोग करते हैं। ये इसलिए है क्योंकि वे यह महसूस करते हैं और विश्वास रखते हैं कि वे श्रेष्ठ हैं। वर्षों से ऐसा ही चला आ रहा हैं। हम कितनी भी अच्छी वेशभूषा धारण करें, उससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता। वे कुछ चीज़ों को अपनाने के लिए तैयार नहीं हैं (फ्रांको 2004 : 150)।

आज भी बहुत अधिक जातिगत भेदभाव उपस्थित है। पर साथ ही लोकतंत्र की कार्य प्रणाली ने जाति व्यवस्था को प्रभावित किया है। जाति हित समूह के रूप में मज़बूत हुई है। हमने भेदभावग्रस्त जातियों को समाज में अपने लोकतंत्रीय अधिकारों के प्रयोग के लिए संघर्ष करते भी देखा है।

वर्ग

वर्ग का वर्णन करने के लिए अनेक प्रयास किए गए हैं। यहाँ हम मार्क्स, वैबर और प्रकार्यवाद के केंद्रीय विचारों का केवल संक्षेप में उल्लेख करेंगे। मार्क्स के सिद्धांतों में सामाजिक वर्ग की परिभाषा इस आधार पर होती है कि उस वर्ग और उत्पादन के साधनों के बीच क्या संबंध हैं। यह प्रश्न पूछे जा सकते हैं कि क्या समूह भूमि अथवा कारखानों सरीखे उत्पादन

के साधनों के स्वामी हैं? अथवा क्या वे किसी वस्तु के नहीं केवल अपने श्रम के स्वामी हैं? वैबर ने जीवन अवसर शब्द का प्रयोग किया है जिसका तात्पर्य बाज़ार क्षमता की सामर्थ्य के प्रतिफल और लाभ से है। वैबर तर्क देते हैं कि असमानता आर्थिक संबंधों पर आधारित हो सकती है। परंतु यह प्रतिष्ठा और राजनीतिक शक्ति पर भी आधारित हो सकती है।

सामाजिक स्तरीकरण का प्रकार्यवादी सिद्धांत, प्रकार्यवाद की आस्था या सामान्य पूर्वकल्पना के साथ आरंभ होता है कि कोई भी समाज 'वर्गहीन' या 'संस्तरणमुक्त' नहीं है। मुख्य प्रकार्यक आवश्यकता सामाजिक स्तरीकरण की वैश्विक उपस्थिति का वर्णन करती है कि समाज द्वारा व्यक्ति को सामाजिक ढाँचे में स्थापित और गातिशील करने के लिए किन आवश्यकताओं का सामना करना पड़ता है। अतः सामाजिक असमानता या स्तरीकरण अनजाने में विकसित किया गया वह साधन है जिसके द्वारा समाज यह निश्चित करता है कि सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण स्थितियों को जान बूझकर सबसे योग्य व्यक्तियों द्वारा भरा जाए। क्या यह सत्य है?

एक परंपरागत जाति व्यवस्था में, सामाजिक अधिक्रम निश्चित व कठोर होता हैं और इन समाजों में पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होता है। इसके विपरीत आधुनिक वर्ग व्यवस्था खुली है और उपलब्धि पर आधारित है। लोकतंत्रीय समाजों में, सर्वाधिक वंचित वर्ग और जाति के किसी व्यक्ति को सर्वोच्च पद पर पहुँचने से कोई भी कानूनन रोक नहीं सकता।

> **क्रियाकलाप-7**
>
> स्वर्गीय राष्ट्रपति के.आर. नारायणन के जीवन के विषय में और अधिक पता लगाएँ। इस संदर्भ में प्रदत्त और अर्जित की गई प्रस्थिति, जाति और वर्ग की संकल्पना की विवेचना करें।

उपलब्धि की इस प्रकार की कहानियाँ वाकई विद्यमान है और ये असीम प्रेरणा का स्रोत होती हैं। यद्यपि अधिकांश हिस्से के लिए जाति व्यवस्था की संरचना अभी तक बनी हुई है। यहाँ तक कि पश्चिमी समाजों में भी, सामाजिक गतिशीलता का समाजशास्त्रीय अध्ययन, संपूर्ण गतिशीलता के आदर्श प्रतिरूप से काफ़ी दूर है। समाजशास्त्र को जाति व्यवस्था और भेदभाव की निरंतरता, दोनों की चुनौतियों के प्रति संवेदनशील होना पड़ेगा। विशेषकर वे, जो व्यवस्था के निम्न स्तरों पर हैं, न केवल सामाजिक बल्कि आर्थिक रूप से भी वंचित स्थिति में हैं।

प्रस्थिति और भूमिका

इन दो संकल्पनाओं 'प्रस्थिति' और 'भूमिका' को अकसर युगल संकल्पनाओं की तरह देखा जाता है। प्रस्थिति समाज या एक समूह में एक स्थिति है। प्रत्येक समाज और प्रत्येक समूह में ऐसी कई स्थितियाँ होती हैं और प्रत्येक व्यक्ति ऐसी कई स्थितियों पर अधिकार रखता है।

अतः प्रस्थिति से तात्पर्य सामाजिक स्थिति और इन स्थितियों से जुड़े निश्चित अधिकारों और कर्तव्यों से है। उदाहरण के लिए, माँ की

एक प्रस्थिति होती है, जिसमें आचरण के कई मानक होते हैं और साथ ही निश्चित ज़िम्मेदारियाँ और विशेषाधिकार भी होते हैं।

भूमिका प्रस्थिति का सक्रिय या व्यवहारात्मक पक्ष है। प्रस्थितियाँ ग्रहण की जाती हैं, एवं भूमिकाएँ निभाई जाती हैं। हम यह कह सकते हैं कि प्रस्थिति एक संस्थागत भूमिका है। यह वह भूमिका है जो समाज में या समाज के विशेष संघों में से किसी में भी नियमित, मानकीय और औपचारिक बन चुकी है।

यह सुस्पष्ट होना चाहिए कि एक आधुनिक ज़टिल समाज में, जैसा कि हमारा समाज है, एक व्यक्ति अपने जीवन में कई विभिन्न प्रस्थितियों को ग्रहण करता है। एक स्कूली छात्र के रूप में आप अपने अध्यापक के छात्र, पंसारी के लिए ग्राहक, बस चालक के लिए यात्री, सहोदरों के लिए भाई या बहन, डॉक्टर के लिए मरीज़ हो सकते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि हम इस सूची को जितना चाहे बढ़ा सकते हैं। समाज जितना छोटा और सरल होगा, एक व्यक्ति की उतनी ही कम प्रकार की प्रस्थितियाँ होंगी।

हम देखते हैं एक आधुनिक समाज में व्यक्ति की बहुत सी प्रस्थितियाँ होती हैं जिसे समाजशास्त्रीय रूप में प्रस्थिति समुच्चय का नाम दिया गया है। व्यक्ति अपने जीवन के विभिन्न चरणों में अलग-अलग प्रस्थितियाँ ग्रहण करते हैं। एक पुत्र, पिता बन जाता है, पिता, दादा बन जाता है और फिर परदादा एवं यह क्रम इसी तरह चलता रहता है। इसे प्रस्थिति क्रम कहते हैं क्योंकि इसका अर्थ जीवन के अनेक चरणों में प्राप्त की गई प्रस्थितियों से है जो एक क्रम में आती हैं।

प्रदत्त प्रस्थिति एक सामाजिक स्थिति है, जो एक व्यक्ति जन्म से अथवा अनैच्छिक रूप से ग्रहण करता है। प्रदत्त प्रस्थिति का सामान्य आधार आयु, जाति, प्रजाति और नातेदारी है। सरल और परंपरागत समाज प्रदत्त प्रस्थिति से चिह्नित होते हैं। दूसरी तरफ़, अर्जित प्रस्थिति वह सामाजिक स्थिति है जो एक व्यक्ति अपनी इच्छा, अपनी क्षमता, उपलब्धियों, सद्‌गुणों और चयन से प्राप्त करता है। अर्जित प्रस्थिति का सामान्य आधार शैक्षणिक योग्यता, आय और व्यावसायिक विशेषज्ञता है। आधुनिक समाज को उपलब्धि के आधार पर आँका जाता है। इसके सदस्यों को प्रतिष्ठा उनकी उपलब्धियों के आधार पर प्रदान की जाती है। आपने अकसर यह वाक्यांश सुना होगा–"आपको अपने आप को साबित करना है।" परंपरागत समाजों में आपकी प्रस्थिति जन्म से परिभाषित और निर्धारित होती थी तथापि जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, उपलब्धि पर आधारित आधुनिक समाजों में भी, प्रदत्त प्रस्थिति महत्त्व रखती है।

प्रस्थिति और प्रतिष्ठा अंत:संबंधित शब्द हैं। प्रत्येक प्रस्थिति के अपने कुछ अधिकार और मूल्य होते हैं। मूल्य किसी व्यक्ति से उसके कार्यों या उनके अनुपालन से नहीं बल्कि सामाजिक स्थिति से जुड़े होते हैं। प्रस्थिति या पदाधिकार से जुड़े मूल्य के प्रकार को प्रतिष्ठा कहते हैं। अपनी प्रतिष्ठा के आधार पर लोग अपनी प्रस्थिति को ऊँचा या नीचा दर्जा दे सकते हैं। एक दुकानदार की तुलना में एक

क्रियाकलाप-8

आपके समाज में किस प्रकार की नौकरियाँ प्रतिष्ठित मानी जाती हैं? इनकी अपने मित्रों के साथ तुलना करें। समानताओं और विभिन्नताओं की चर्चा करें। इसके कारणों को समझने की कोशिश करें।

डॉक्टर की प्रतिष्ठा ज़्यादा होगी चाहे उसकी आय कम ही क्यों न हो। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि किस व्यवसाय को प्रतिष्ठित माना जाता है, यह विचार समाज और समय के साथ बदलता रहता है।

लोग अपनी भूमिकाओं को सामाजिक अपेक्षाओं के अनुसार निभाते हैं जो कि भूमिका को ग्रहण करना और भूमिकाओं को निभाना है। एक बच्चा इस आधार पर व्यवहार करना सीखता है कि दूसरे लोग उसके व्यवहार को किस प्रकार देखते व आँकते हैं।

भूमिका संघर्ष एक या अधिक प्रस्थितियों से जुड़ी भूमिकाओं की असंगतता है। यह तब होता है जब दो या अधिक भूमिकाओं से विरोधी अपेक्षाएँ पैदा होती हैं। एक सामान्य उदाहरण मध्यम वर्गीय कामकाजी महिला का है जिसे घर पर माँ तथा पत्नी और कार्य स्थल पर कुशल व्यावसायिक की भूमिका निभानी पड़ती है।

क्रियाकलाप-9

पता लगाएँ कि घर का नौकर और निर्माण करने वाला मज़दूर किस प्रकार भूमिका संघर्ष का सामना करते हैं।

यह एक सामान्य मान्यता है कि पुरुष भूमिका संघर्ष का सामना नहीं करते। समाजशास्त्र, जिसमें आनुभविक और तुलनात्मक दोनों विषय आते है, इससे अलग राय रखता हैं।

> खासी मातृवंश पुरुषों के लिए बहुत अधिक भूमिका संघर्ष पैदा करता है। वे एक तरफ़ अपने जन्मजात घर और दूसरी तरफ़ पत्नी और बच्चों के प्रति ज़िम्मेदारी में बँट जाते हैं। वे अपने बच्चों की निष्ठा को शासित करने के आवश्यक अधिकार और यहाँ तक कि मृत्यु के बाद, स्वयं अर्जित संपत्ति को अपने बच्चों को देने के अधिकार से भी वंचित महसूस करते हैं...
>
> खासी महिलाओं को यह दबाव और अधिक रूप में प्रभावित करता है। एक महिला कभी भी पूर्ण रूप से आश्वस्त नहीं हो सकती है कि उसके पति को, अपनी बहन का घर, अपनी पत्नी के घर की अपेक्षा अधिक अनुकूल नहीं लगता (नोंगब्री 2003:190)।

भूमिका स्थिरीकरण, समाज के कुछ सदस्यों के लिए कुछ विशिष्ट भूमिकाओं को सुदृढ़ करने की प्रक्रिया है। उदाहरण के लिए अकसर पुरुष कमाने वाली और महिलाएँ घर चलाने वाली रूढ़िबद्ध भूमिकाओं को निभाते हैं। सामाजिक भूमिकाओं और प्रस्थितियों को अकसर स्थिर और अपरिवर्तनीय रूप में देखा जाता है जोकि गलत है। यह महसूस किया गया है कि व्यक्ति उन अपेक्षाओं को समझने लगता है जो एक संस्कृति में सामाजिक स्थिति से जुड़ी होती हैं। वह उन भूमिकाओं को उसी प्रकार निभाता है जिस प्रकार वे परिभाषित की जाती हैं।

क्रियाकलाप-10

समाज के प्रभावशाली हिस्से द्वारा सामाजिक रूप से निर्धारित भूमिकाओं का उल्लंघन या अतिक्रमण करने वाले लोगों को नियंत्रित व दंडित करने की कोशिश के बारे में समाचार पत्रों में छपी रिपोर्टों को एकत्रित कीजिए।

समाजीकरण द्वारा व्यक्ति सामाजिक भूमिकाओं को ग्रहण करते हैं और उन्हें निभाना सीखते हैं। तथापि, इस मत को गलत रूप से लिया जाता है। यह बताता है कि व्यक्ति भूमिकाओं को बनाने अथवा सौदा करने की बजाय, सिर्फ़ उन्हें ग्रहण करता है। वास्तव में, समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें मनुष्य कर्ता की भूमिका निभा सकते हैं, वे केवल निष्क्रिय वस्तु नहीं हैं जो निर्देशों की प्रतीक्षा करते हैं। व्यक्ति सामाजिक अंत:क्रिया की निरंतर चलने वाली प्रक्रिया द्वारा सामाजिक भूमिकाओं को समझने और अपनाने लगते हैं। यह विवेचना शायद आपको व्यक्ति और समाज के संबंधों को समझने में मदद करेगी, जिसके बारे में हम पहले अध्याय में पढ़ चुके हैं।

भूमिकाएँ और प्रस्थितियाँ न ही स्थिर होती हैं और न ही किसी के द्वारा प्रदान की जाती हैं। लोग भूमिकाओं और प्रस्थितियों में जाति या प्रजाति अथवा लिंग पर आधारित भेदभाव के खिलाफ़ संघर्ष करते हैं दूसरी तरफ़ समाज में कुछ विभाग ऐसे होते हैं जो इन परिवर्तनों का विरोध करते हैं। उसी प्रकार व्यक्तियों द्वारा भूमिकाओं का उल्लंघन करने पर उन्हें प्राय: दंडित किया जाता है। अत: समाज न केवल भूमिकाओं और प्रस्थितियों के साथ बल्कि सामाजिक नियंत्रण के साथ भी कार्य करता है।

समाज व सामाजिक नियंत्रण

सामाजिक नियंत्रण समाजशास्त्र में सामान्यत: सबसे ज़्यादा प्रयोग की जाने वाली संकल्पनाओं में से एक है। इसका तात्पर्य उन अनेक साधनों से है जिनके द्वारा समाज अपने उद्दंड या उपद्रवी सदस्यों को पुन: राह पर लाता है।

आप यह जानेंगे कि किस प्रकार संकल्पनाओं के अर्थ के बारे में समाजशास्त्र में अलग-अलग दृष्टिकोण और विवाद हैं। आप यह भी जानेंगे कि प्रकार्यवादी समाजशास्त्रियों ने समाज को विशेष रूप से सामंजस्यपूर्ण समझा और विरोधी समाजशास्त्रियों ने समाज को मुख्य रूप से असमान, असंगत और अत्याचारी समझा। हमने यह भी देखा कि किस प्रकार कुछ समाजशास्त्रियों ने व्यक्ति और समाज पर अधिक ध्यान केंद्रित किया और दूसरों ने सामूहिकताओं पर जैसे वर्ग, प्रजातियाँ, जातियाँ।

प्रकार्यवादी दृष्टिकोण के अनुसार सामाजिक नियंत्रण का तात्पर्य है-(1) व्यक्तियों और समूहों के व्यवहार को नियमित करने के लिए बल प्रयोग करना, (2) समाज में व्यवस्था बनाए रखने के लिए मूल्यों और प्रतिमानों को लागू करना। सामाजिक नियंत्रण को एक तरफ़ व्यक्तियों या समूहों के पथभ्रष्ट व्यवहारों को नियंत्रित करने के लिए संचालित किया जाता है और दूसरी तरफ़, सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक साहचर्य को बनाए रखने के लिए व्यक्तियों और समूहों के तनाव और विरोध को

दूर करने में इसका प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार समाज में स्थिरता के लिए सामाजिक नियंत्रण को महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

संघर्षवादी सिद्धांतवादी अकसर सामाजिक नियंत्रण को ऐसे साधनों के रूप में अधिक देखेंगे जिनके द्वारा समाज के प्रभावी वर्ग का बाकी समाज पर नियंत्रण लागू किया जा सकता है। स्थिरता को समाज के एक भाग द्वारा दूसरे भाग पर प्रभुत्व के रूप में देखा जाएगा। इसी प्रकार कानून को समाज में शक्तिशालियों और उनके हितों के औपचारिक दस्तावेज़ के रूप में देखा जाएगा।

सामाजिक नियंत्रण का तात्पर्य सामाजिक प्रक्रियाओं, तकनीकों और रणनीतियों से है जिनके द्वारा व्यक्ति या समूह के व्यवहार को नियमित किया जाता है। इसका अर्थ व्यक्तियों और समूहों के व्यवहार को नियमित करने के लिए बल प्रयोग से और समाज में व्यवस्था के लिए मूल्यों व प्रतिमानों को लागू करने से है।

सामाजिक नियंत्रण अनौपचारिक या औपचारिक हो सकता है। जब नियंत्रण के संहिताबद्ध, व्यवस्थित और अन्य औपचारिक साधन प्रयोग किए जाते हैं तो यह औपचारिक सामाजिक नियंत्रण के रूप में जाना जाता है। ये औपचारिक सामाजिक नियंत्रण के माध्यम और साधन होते हैं उदाहरण के लिए, कानून और राज्य। आधुनिक समाज में, सामाजिक नियंत्रण

सामाजिक नियंत्रण का अंतिम और निःसंदेह प्राचीनतम साधन है–शारीरिक बल प्रयोग... यहाँ तक कि आधुनिक लोकतंत्र के उदार विचारों वाले समाजों में भी, चरम तर्क हिंसा है। कोई भी राज्य पुलिस बल या इसके समान किसी अन्य सशस्त्र बल के बिना नहीं रह सकता... किसी भी क्रियाशील समाज में हिंसा को मितव्ययता से और अंतिम उपाय के रूप में प्रयोग किया जाता है, प्रतिदिन के सामाजिक नियंत्रण के लिए बल प्रयोग का केवल भय ही काफ़ी होता है... जब मनुष्य ऐसे गहन समूहों में रहते या काम करते हैं, जिसमें वे व्यक्तिगत रूप से जाने जाते हैं और जिसके प्रति वे व्यक्तिगत निष्ठा की भावना से बँधे होते हैं (वह प्रकार जिसे समाजशास्त्री प्राथमिक समूह कहते हैं), तो वास्तविक या संभावित पथभ्रष्ट लोगों को राह पर लाने के लिए नियंत्रण के प्रबल और तीक्ष्ण साधनों का प्रयोग किया जाता है... सामाजिक नियंत्रण का एक पक्ष, जिस पर ज़ोर देना आवश्यक है, यह तथ्य है कि यह अकसर कपटपूर्ण दावे पर आधारित होता है... एक छोटा लड़का अपने समवयस्क समूह पर अपने बड़े भाई, जिसे ज़रूरत के समय किसी विरोधी को पीटने के लिए बुलाया जा सकता है, के द्वारा महत्त्वपूर्ण नियंत्रण कर सकता है। ऐसे किसी भाई की अनुपस्थिति में, भाई की कल्पना करना भी संभव है। यह छोटे लड़के के जन संपर्क कौशल का प्रश्न होगा कि क्या वह अपनी कल्पना को वास्तविक नियंत्रण में बदलने में सफल होगा या नहीं (बर्जर 84-90)।

क्या आपने किसी छोटे बच्चे को यह कहकर दूसरे बच्चे को डराते देखा या सुना है कि, "मैं अपने बड़े भाई को बता दूँगा?"
क्या आप अन्य उदाहरणों के बारे में सोच सकते हैं?

क्रियाकलाप-11

क्या आप अपने जीवन से ऐसे उदाहरणों के बारे में सोच सकते हैं कि 'अशासकीय' सामाजिक नियंत्रण किस प्रकार कार्य करता है? क्या आपने कक्षा में या अपने समवयस्क समूह में यह निरीक्षण किया है कि एक बच्चा जो दूसरे से थोड़ा भी अलग तरह का व्यवहार करता है, उससे किस प्रकार बर्ताव किया जाता है? क्या आपने ऐसी घटनाएँ देखी हैं जब बच्चों को उनके समवयस्क समूह अन्य बच्चों की तरह बनने के लिए तंग करते हैं?

के औपचारिक साधनों और माध्यमों पर ज़ोर दिया जाता है।

प्रत्येक समाज में, एक दूसरे प्रकार का सामाजिक नियंत्रण होता है, जिसे अनौपचारिक सामाजिक नियंत्रण के रूप में जाना जाता है। यह व्यक्तिगत, अशासकीय और असंहिताबद्ध होता है। इसमें मुस्कान, चेहरे बनाना, शारीरिक भाषा, आलोचना, उपहास, हँसी आदि सम्मिलित होते हैं। एक ही समाज में इनके प्रयोग में काफ़ी भिन्नताएँ हो सकती हैं। दैनिक जीवन में ये बहुत प्रभावशाली होते हैं।

फिर भी, कुछ मामलों में सामाजिक नियंत्रण की अनौपचारिक विधियाँ अनुरूपता या आज्ञाकारिता लागू करने में असमर्थ हो सकती हैं। अनौपचारिक सामाजिक नियंत्रण के विभिन्न माध्यम होते हैं अर्थात परिवार, धर्म, नातेदारी आदि। क्या आपने इज़्ज़त के लिए हत्या के बारे में सुना है? नीचे दी गई समाचार पत्र रिपोर्ट को पढ़ें और इसमें शामिल सामाजिक नियंत्रण के विभिन्न माध्यमों को पहचानें।

स्वीकृति पुरस्कार या दंड का एक ढंग है जो सामाजिक रूप से अपेक्षित व्यवहार को पुन:स्थापित करता है। सामाजिक नियंत्रण सकारात्मक या नकारात्मक हो सकता है। समाज के सदस्यों को अच्छे और अपेक्षित व्यवहार के लिए पुरस्कृत किया जा सकता है। दूसरी तरफ़, नियमों को लागू करने के लिए और विचलन को राह पर लाने के लिए

अंतरजातीय विवाह करने पर भाई ने बहन की हत्या की

...पुलिस के अनुसार 19 वर्षीय एक लड़की...जब अस्पताल में सो रही थी तब उसके बड़े भाई ने उसका सिर कलम कर उसकी हत्या कर दी जिसे 'इज़्ज़त के लिए हत्या' (*ऑनर किलिंग*) कहा जाता है।

उन्होंने कहा कि लड़की... द्वारा जाति के बाहर विवाह करने के बाद 16 दिसंबर को उसके भाई ... ने उस पर चाकू से हमला किया था और उसका अस्पताल में इलाज चल रहा था। उन्होंने बताया कि वह और उसका प्रेमी 10 दिसंबर को घर से भाग गए थे और शादी करने के बाद 16 दिसंबर को अपने घर वापस आ गए थे। उसके अभिभावकों ने इस विवाह का विरोध किया था।

पंचायत ने भी युगल पर दबाव डालने की कोशिश की थी, पर उन्होंने अलग रहने से मना कर दिया था।

नकारात्मक स्वीकृतियों का प्रयोग भी किया जाता है।

विचलन का अर्थ उन क्रियाओं से है जो समाज या समूह के अधिकतर सदस्यों के मूल्यों या आदर्शों के अनुसार नहीं होती है। विचलन को मोटे तौर पर विभिन्न संस्कृतियों या उप संस्कृतियों में अंतर करने वाले मानकों और मूल्यों के रूप में जाना जाता है। इसी प्रकार विचलन के विचार को एक समय से दूसरे समय में चुनौतियाँ मिलती हैं और ये परिवर्तित होते रहते हैं। उदाहरण के लिए, एक ही समाज में अंतरिक्षयात्री बनने की इच्छा रखने वाली महिला को एक समय में तो विचलक माना जाएगा और दूसरे समय में उसी समाज में उसकी प्रशंसा की जाएगी। आप पहले ही जानते हैं कि समाजशास्त्र किस प्रकार सामान्य बौद्धिक ज्ञान से भिन्न है। इस अध्याय में चर्चा की गई विशिष्ट शब्दावली और संकल्पनाएँ समाज की समाजशास्त्रीय समझ को बढ़ाने में आपकी मदद करेंगी।

शब्दावली

विरोधी सिद्धांत—एक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण जो मानव समाजों में उपस्थित तनावों, विभाजनों और संघर्षरत रुचियों पर ध्यान केंद्रित करता है। संघर्षवादी सिद्धांतकार मानते हैं कि समाज में संसाधनों की कमी और उनका मूल्य विरोध उत्पन्न करता है क्योंकि समूह इन संसाधनों पर पहुँच और नियंत्रण स्थापित करने के लिए संघर्ष करते हैं। कई संघर्षवादी सिद्धांतकार मार्क्स के लेखन से अत्यधिक प्रभावित हुए हैं।

प्रकार्यवाद—एक सैद्धांतिक दृष्टिकोण जो इस धारणा पर आधारित है कि सामाजिक घटनाओं को उन कार्यों के रूप में सबसे अच्छी प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है जो वे निभाते हैं। अर्थात समाज की निरंतरता में, वे जो योगदान करते हैं एवं एक जटिल व्यवस्था के रूप में समाज को, जिसके विभिन्न भाग एक दूसरे के साथ कार्य करते हैं, को समझने की आवश्यकता है।

पहचान—एक व्यक्ति या समूह के चरित्र की विशेषताएँ जो यह बताती हैं कि वे कौन हैं और उनके लिए क्या अर्थपूर्ण है। पहचान के कुछ स्रोत हैं—लिंग, राष्ट्रीयता या प्रजातीयता, सामाजिक वर्ग।

उत्पादन के साधन—वे साधन जिनके द्वारा समाज में भौतिक वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है, जिनमें न केवल तकनीक बल्कि उत्पादकों के परस्पर सामाजिक संबंध भी सम्मिलित हैं।

व्यष्टि समाजशास्त्र और समष्टि समाजशास्त्र–आमने-सामने अंत:क्रिया की परिस्थितियों में प्रतिदिन के व्यवहार का अध्ययन सामान्यत: व्यष्टि समाजशास्त्र कहलाता है। व्यष्टि समाजशास्त्र में विश्लेषण व्यक्तिगत स्तर पर या छोटे समूहों में होता है। यह समष्टि समाजशास्त्र से भिन्न है जिसका सरोकार बड़ी सामाजिक व्यवस्था से होता है, जैसे राजनीतिक व्यवस्था या आर्थिक व्यवस्था। हालाँकि ये भिन्न दिखाई देते हैं, पर ये घनिष्ठ रूप से संबंधित होते हैं।

जन्म संबंधी–किसी के जन्मस्थान या जन्मकाल से संबंधित।

मानक–व्यवहार के नियम जो एक संस्कृति के मूल्यों को प्रतिबिंबित करते हैं या उसे मूर्तरूप देते हैं, जो या तो व्यवहार के एक दिए गए प्रकार को सुझाते या वर्जित करते हैं। मानकों के पीछे हमेशा एक या दूसरे प्रकार की स्वीकृति होती है, जो अनौपचारिक निंदा से शारीरिक दंड या प्राणदंड में बदलती रहती हैं।

स्वीकृति–पुरस्कार या दंड की प्रणाली जो सामाजिक रूप में अपेक्षित व्यवहार को पुन:स्थापित करती है।

अभ्यास

1. समाजशास्त्र में हमें विशिष्ट शब्दावली और संकल्पनाओं के प्रयोग की आवश्यकता क्यों होती है?
2. समाज के सदस्य के रूप में आप समूहों में और विभिन्न समूहों के साथ अंत:क्रिया करते होंगे। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से इन समूहों को आप किस प्रकार देखते हैं?
3. अपने समाज में उपस्थित स्तरीकरण की व्यवस्था के बारे में आपका क्या प्रेक्षण है? स्तरीकरण से व्यक्तिगत जीवन किस प्रकार प्रभावित होते हैं?
4. सामाजिक नियंत्रण क्या है? क्या आप सोचते हैं कि समाज के विभिन्न क्षेत्रों में सामाजिक नियंत्रण के साधन अलग-अलग होते हैं? चर्चा करें।
5. विभिन्न भूमिकाओं और प्रस्थितियों को पहचानें जिन्हें आप निभाते हैं और जिनमें आप स्थित हैं। क्या आप सोचते हैं कि भूमिकाएँ और प्रस्थितियाँ बदलती हैं? चर्चा करें कि ये कब और किस प्रकार बदलती हैं।

सहायक पुस्तकें

बर्जर, एल. पीटर. 1976. *इंविटेशन टू सोशियोलॉजी : ए ह्यूमनिस्टिक पर्सपैक्टिव.* पेंगुइन, हारमंडस्वर्थ।

बोटोमोर, टॉम. और रॉबर्ट, निस्बैट. 1978. *ए हिस्ट्री ऑफ़ सोशियोलॉजीकल एनालिसिस.* बेसिक बुक्स, न्यूयार्क।

बोटोमोर, टॉम. 1972. *सोशियोलॉजी.* विंटेज बुक्स, न्यूयार्क।

देशपांडे, सतीश. 2003. *कंटेंप्रेरी इण्डिया : ए सोशियोलॉजीकल व्यू.* वाइकिंग, दिल्ली।

फरनांडो, फ्रांको. मैक्वान, ज्योत्सना. और रामनाथन, सुगुना. 2004. *जर्नीज़ टू फ्रीडम दलित नैरेटिव्स.* साम्य, कोलकाता।

गिडिंस, एंथोनी. 2001. *सोशियोलॉजी.* चौथा संस्करण, पॉलिटी प्रेस, केंब्रिज।

जयराम, एन. 1987. *इंट्रोडक्टरी सोशियोलॉजी.* मैकमिलन इंडिया लिमिटेड, दिल्ली।

नोंगब्री, तिपलुत. 2003. 'जैंडर एंड द खासी फैमिली स्ट्रक्चर : द मेघालय सक्सैशन टू सैल्फ़ एक्वायर्ड प्रोपर्टी एक्ट, 1984', रेगे, शर्मिला. (सं). *सोशियोलॉजी ऑफ़ जैंडर–द चैलेंज ऑफ़ फ़ैमिनिस्ट सोशियोलॉजीकल नॉलेज.* सेज पब्लिकेशंस, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या 182–194.

श्रीनिवास, एम.एन. 1996. *विलेज, कास्ट, जैंडर एंड मैथड.* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली।